जैनगीतिकाव्यमें भक्ति-विवेचन

प्रो० श्रीचन्द्र जैन, उज्जैन, म० प्र०

भक्तिकी महिमा

सन्तप्त जीवके लिये भक्ति एक अद्‌भुत रसायन है जिसके सहारे वह अपनी आकुलताको सुगमतासे मिटा सकता है। यह अथाह सागरको गोपदके रूपमें परिणत करने वाली तथा स्यामल मेघों की डरावनी अनुभूतिको सुखद भावनामें बदलने वाली है। असाध्य रोगोंके शमनार्थ भक्ति ही एक अलौकिक औषधि मानी गई है। विषधरको मणिमालामें, कांटोंको फूलोंमें, लोहेको स्वर्णमें एवं विषको अमृतमें बदलने वाली यह विनयरूपिणी भक्ति है जो चिरकालसे प्राणीको आकर्षित कर रही है।

सब ओरसे निराश अबलाको सांत्वना देने वाली भक्ति सर्वमान्य है। ग्राहके मुखमें विह्वल गजराज का संरक्षण इसी भक्ति भावनाने किया था। अंजन तस्करकी आत्मशुद्धि भक्तिसे ही हुई थी। अड़तालिस बन्द ताले एक सन्तके भजनसे ही क्षणभरमें खुल गये थे। कोढ़ जैसा भयावह रोग भक्तिसे सिंचित जल सिंचन से नष्ट हो गया था, यह आश्चर्य आज भी हमें चकित कर देता है। सतीत्वके परीक्षण कालमें भक्ति भावना ने जो अद्‌भुत परिणाम प्रदर्शित किये हैं, वे सर्वविदित हैं। पाषाण मूर्तिका विलीन होना, शुष्क वृक्षका पल्लवित होना, सूखे सरोवरका कमलोंसे परिपूर्ण होना, भूधरका एक निमिषमें धूलि बन जाना, क्रुद्ध मृगराजका विनम्र बनकर श्वान-शिशुकी भांति पैर चाटना एवं तूफानका सुरभित पवनके रूपमें पूर्ण वातावरणको सुगन्धित कर देना—ये सब भक्तिके ही चमत्कार हैं।

मुक्ति साधनाका मार्ग

भक्ति, ज्ञान और कर्म—ये तीन साधनाके बड़े मार्ग हैं। ज्ञान मानव जीवनको किसी शुद्ध अद्वैत तत्त्व की ओर खींचता है, कर्म उसे व्यवहारकी ओर प्रवृत्त करता है, किन्तु भक्ति या उपासनाका मार्ग ही ऐसा है जिसमें संसार और परमार्थ—दोनोंकी एक साथ मधुर साधना करना आवश्यक है। माधुर्य ही भक्तिका प्राण है। देवतत्त्वके प्रति रसपूर्ण आकर्षण जब सिद्ध होता है, तभी सहज भक्तिकी भूमिका प्राप्त होती है। यों तो बाह्य उपचार भी भक्तिके अंग कहे गये हैं और नवधा भक्ति एवं षोडशोपचार पूजाको ही भक्ति सिद्धान्तके अन्तर्गत रखा जाता है, किन्तु वास्तविक भक्ति मनकी वह दशा है जिसमें देवत्वका माधुर्य मानवी मनको प्रबल रूपसे अपनी ओर खींच लेता है। यह तो अनुभव सिद्ध स्थिति है। जब यह प्राप्त होती है, तब मनुष्यका जीवन, उसके विचार और कर्मकी उच्च भूमिकामें मनुष्य इस प्रकारके मानस परिवर्तनका अनुभव नहीं करता क्योंकि साधनाका कोई भी मार्ग अपनाया जाय, उसका अन्तिम फल देवतत्त्वकी उपलब्धि ही है। देवतत्त्वकी उपलब्धिका फल है आन्तरिक आनन्दकी अनुभुति। अतएव किसी भी साधना पथको तारतम्य की दृष्टिसे ऊँचा या नीचा न कहकर हमें यही भाव अपनाना चाहिये कि रुचिभेदसे मानवको इनमेंसे किसी एक को चुन लेना होता है। तभी मन अनुकूल परिस्थिति पाकर उस मार्गमें ठहरता है। वास्तविक साधना वह है जिसमें मनका अन्तर्द्वन्द्व मिट सके और अपने भीतर ही होने वाले तनाव या संघर्षकी स्थिति बचकर मनकी सारी शक्ति एक ओर ही लग सके। जिस प्रकार बालक माताके दूधके लिये व्याकुल होता है और जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अन्नके लिये क्षुधित होकर सर्वात्मना उसीकी आराधना करता है, वैसे ही अमृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवतत्त्वके लिये जब हमारी भावना जाग्रत हो, तभी भक्तिको विपुल सुख समझना चाहिये। भक्तिका सूत्रार्थ है—भागधेय प्राप्त करना।[1]

हिन्दू, बौद्ध, जैन—सभी धर्मोंने भक्ति पदको स्वीकार किया है। यह एक प्राचीन साधना मार्ग रहा है। भक्तिसे मनके विकार नष्ट होते हैं और उदात्त भावोंकी सृष्टिके साथ इंसान एक ऐसे पुनीत वातावरणमें अपने आपको परिवेष्टित करता है कि उसे समस्त अशुभ संकल्प-विकल्प तिरोहित हो जाते हैं। वैष्णव सन्तोंने इस भक्तिमार्गको राजपथके रूपमें स्वीकार किया है।

भक्तिका व्युत्पत्त्यर्थ

'भक्ति' शब्द 'भज' धातुमें स्त्रीलिंग क्तिन् प्रत्यय जोड़कर बनता है। ऐसा अभिधान राजेन्द्र कोशमें माना गया है। मुनि पाणिनिने 'स्त्रियां क्तिन्' से धातुओंमें स्त्रीवाची क्तिन् प्रत्यय लगानेका विधान किया है। क्तिन् प्रत्यय भाव अर्थमें होता है किन्तु वैयाकरणोंके यहाँ कृदन्तीय प्रत्ययोंके अर्थ परिवर्तन एक प्रक्रियाके अङ्ग हैं। अतः वहीं क्तिन् प्रत्यय अर्थान्तरमें भी हो सकता है। इस प्रकार भक्ति शब्दकी भजनं भक्तिः, भज्यते अनया इति भक्तिः, भजन्ति अनया इति भक्तिः, इत्यादि व्युत्पत्तियाँ की जा सकती हैं।

'भज सेवायम्' से 'भज' धातु सेवा अर्थमें आती है। पाइअ-सद्द-महण्णवमें भी भक्तिको सेवा कहा है। राजेन्द्रकोशमें सेवायां भक्तिर्विनयः सेवा कहकर भक्तिको सेवा तो माना ही है, सेवाका अर्थ भी विनय किया है। विनयके चार भेद हैं जिनमें उपचार विनयका सेवासे मुख्य सम्बन्ध है। आचार्य पूज्यपादने आचार्योंके पीछे-पीछे चलने, सामने आने पर खड़े हो जाने, अञ्जलिबद्ध होकर सामने नमस्कार करने आदि को उपचार विनय कहा है। निशीथचूर्णिमें भी 'अब्भुट्ठाणदण्डगहणपायपुंछणासणप्पदाणगहणादीहि सेवा जा सा भक्ति' लिखा है। आचार्य वसुनन्दीने उपचारविनयके भी तीन भेद किये हैं जिनमें कायिक उपचार विनयका सेवासे सीधा सम्बन्ध है। उन्होंने लिखा है कि साधुओंकी वन्दना करना, देखते ही उठकर खड़े हो जाना, अञ्जलि जोड़ना, आसन देना, पीछे-पीछे चलना, शरीरके अनुकूल मर्दन करना और संस्तर आदि करना कायिक विनय है। आचार्य शान्तिसूरिने एक प्राचीन गाथाकी व्याख्या करते हुए कहा है कि सुर और सुरपति भक्तिवशाद् अञ्जलिबद्ध होकर भगवान् महावीरको नमस्कार करते हैं। वह भी सेवा है। आचार्य श्रुतसागर सूरिने भी आचार्य, उपाध्याय आदिको देखकर खड़े होने, नमस्कार करने, परोक्षमें परोक्ष विनय करने और गुणोंका स्मरण करनेको भगवान्‌की सेवा कहा है।[2]

व्यापक अर्थमें भक्तिके जो भिन्न-भिन्न अर्थ प्रतिपादित किये गये हैं, वे सब इसकी व्यापकताको सिद्ध करते हैं। जिस प्रकार चातक श्यामले मेघोंके प्रति आकृष्ट होता हुआ स्वातिबूंदके लिये लालायित रहता है, चकोर चन्द्रमाकी शीतल किरणोंका पान करने हेतु उत्सुक रहता है एवं मयूर पावसकालीन जलदोंको देखकर विमुग्ध हो उठता है, उसी प्रकारकी तितिक्षा भक्तके मानसमें आराध्यकी शान्त मुद्रा देखनेके लिये प्रतिक्षण उमड़ती रहती है। यही आतुरता, यही विह्वलता और वही तत्परता भक्तिकी आधारशिला है। आत्मसमर्पण, एकाग्रता, निश्चलता, तीव्र उत्कण्ठा एवं दृढ़ श्रद्धा ही भक्तिको पल्लवित एवं पुष्पित करती है। वस्तुतः अपने आराध्यके प्रति अनुराग ही सच्ची भक्ति है।

---

१. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, जैन भक्ति काव्यकी पृष्ठभूमि, प्राक्कथन पृ० ३।

२. डॉ० प्रेमसागर जैन, जैनभक्तिकाव्यकी पृष्ठभूमि, पृ० १-२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भक्ति और अनुराग

शांडिल्य, नारद आदि भक्ति आचार्योंने भगवान्‌के प्रति परम अनुरक्तिको भक्ति कहा है। तुलसीके मतानुसार भी भक्ति प्रेम स्वरूप है। रामके प्रति प्रीति ही भक्ति है :

प्रीति राम सों नीति पथ, चलिय रागरिस जीति।
तुलसी हंसनके मते इहै भगतिकी रीति॥

उन्होंने अन्यत्र भी कहा है :

बिनु छल बिस्वनाथ पदनेहू। राम भगत कर लच्छन एहू॥

भगवान्‌के प्रति प्रेमकी अतिशयता पर बल देनेके लिए ही तुलसीने उनसे प्रार्थना की है :

कामिहि नारि पिआरि जिमि,
लोभिन्हि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर,
प्रिय लागहुं मोहि राम॥

चातक आदि उपमानों द्वारा भी उन्होंने भक्तिकी निष्कामता और अनन्य शरणागतिका निदर्शन किया है।[3]

भक्तिके निरूपणमें प्रयुक्त अनुराग शब्द कुछ विचारकोंको अप्रिय सा लगा है लेकिन हमें यह समझना चाहिये कि जिससे अनुराग किया जाता है, उसके अनुरूप बननेका भी अनुरागी प्रयास अवश्य ही करता है। जैन संस्कृतिमें भक्त भगवान्‌के प्रति पूर्ण अनुराग प्रदर्शित करता है। ये भगवान् वीतरागी होते हैं, अतः भक्त शनैः शनैः अनुराग करता हुआ एक दिन वीतरागी बन जाता है तथा जीवनके चरम लक्ष्यको पाकर अपने आपको कृतकृत्य मानता है।

आचार्य पूज्यपादने भक्तिकी परिभाषा लिखते समय कहा है कि अरहंत, आचार्य, बहुश्रुत और प्रवचनके भावविशुद्धियुक्त अनुराग ही भक्ति है। आचार्य सोमदेवका कथन है कि जिन, जिनागम और तप तथा श्रुतमें परायण आचार्यमें सद्भाव विशुद्धिसे सम्पन्न अनुराग भक्ति कहलाता है। हरिभक्तिरसामृत-सिन्धुमें भी लिखा है कि इष्टमें उत्पन्न हुए स्वाभाविक अनुरागको ही भक्ति कहते हैं। महात्मा तुलसी दासके मतमें भी यही सत्य है। इसी की व्याख्या करते हुए डा० वासुदेवशरण अग्रवालका कथन है कि जब अनुराग स्त्रीविशेषके लिये न रहकर, प्रेम, रूप और तृप्तिकी समष्टि किसी दिव्य तत्त्व या रामके लिये हो जायँ, तो वही भक्तिकी सर्वोत्तम मनोदशा है।

अनुरागमें जैसी तल्लीनता और रुचि एकनिष्ठता सम्भव है, अन्यत्र नहीं। जैन कवि आनन्दघनने भक्ति पर लिखते हुए कहा है कि जिस प्रकार उदर भरणके लिये गौयें बनमें जाती हैं, घास चरती हैं, चारों ओर फिरती हैं, पर उनका मन अपने बछड़ेमें लगा रहता है, वैसे ही संसारके कामोंको करते हुए भी भक्त का मन भगवान्‌के चरणोंमें लगा रहता है।

जैनोंका भगवान् वीतरागी है। वह सब प्रकारके रागोंसे उन्मुक्त होनेका उपदेश देता है। राग कैसा ही हो, कर्मोंके आस्रव (आगमन) का कारण है। फिर उस भगवान्‌में, जो स्वयं वीतरागी है, राग कैसे सम्भव है? इसका उत्तर देते हुए आचार्य समन्तभद्रका कथन है कि भगवान्‌से अनुरागके कारण जो पाप होता है, वह उससे उत्पन्न बहुपुण्य राशिकी तुलनामें अत्यल्प होता है। यह बहुपुण्य राशि भी उसी प्रकार दोषका कारण नहीं बनती जिस प्रकार कि विषयकी एक कणिका, शीतशिवाम्बुराशि समुद्रको दूषित

३. तुलसी, सम्पादक उदयभानुसिंह, पृ० १९३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करनेमें समर्थ नहीं होती। आचार्य कुन्दकुन्दने वीतरागियोंमें अनुराग करने वाले को सच्चा योगी कहा हैं। उनका यह भी कथन है कि आचार्य, उपाध्याय और साधुओंमें प्रीति करने वाला सम्यग्दृष्टि हो जाता है। उसकी दृष्टिमें वीतरागीमें किया गया अनुराग यत्किञ्चित् भी पापका कारण नहीं है। परमें होने वाला राग ही बन्धका हेतु है। वीतरागी परमात्मा पर नहीं, अपितु स्व आत्मा ही है। श्रीयोगीन्दुका कथन है कि मोक्षमें रहने वाले सिद्ध और देहमें तिष्ठने वाले आत्मामें कोई भेद नहीं है। जिनेन्द्रमें अनुराग करना अपनी आत्मामें ही प्रेम करना है। वीतरागमें किया गया अनुराग निष्काम ही है। उनमें किसी प्रकारकी कामना सन्निहित नहीं है। वह भगवान्से अपने ऊपर न दया चाहता है, न अनुग्रह और न प्रेम। जैन भक्तिका ऐसा निष्काम अनुराग गीताके अतिरिक्त अन्यत्र देखनेको नहीं मिलता है।[1]

ज्ञान और भक्ति—ये दोनों एक दूसरेके पूरक कहे गये हैं—ज्ञान भक्तिकी परिपुष्टि करता हुआ, इसका जनक भी कहा गया है। इसके अभावमें भक्ति अपनी सार्थकतासे विहीन कही गई है। जिस प्रकार सम्यग्दर्शनके बिना सम्यग् ज्ञान नहीं होता, उसी प्रकार ज्ञान की उपलब्धि न होने पर भक्तिकी प्राप्ति भी असम्भाव्य मानी गई है।

गम्भीरतासे विचार करने पर जो भक्तिका फल है, वही ज्ञानका भी है। ज्ञान सुगम न होकर कष्ट-साध्य है और भक्ति अपेक्षाकृत सरल एवं सुलभ्य है। ज्ञान मार्गमें बुद्धिका प्राबल्य देखा जाता है जबकि भक्तिमें भावका। गोस्वामी तुलसीदासने भी इसी तथ्यको स्वीकार किया है। गोस्वामीजी ज्ञान और भक्ति-के समन्वयमें विशेषतः विश्वास करते हैं।

जिस प्रकार ज्ञान और भक्ति एक-दूसरेके पूरक हैं, उसी प्रकार ध्यान और भक्तिकी एकरूपता भी सर्वमान्य है। इन दोनोंमें आत्मचिंतन और एकाग्रता विद्यमान है जो आत्मस्वरूपके लिये परमा-वश्यक है।

इस प्रकार भक्तिका स्वरूप बड़ा मनोरम तथा मानस विशुद्धिका उत्कृष्ट साधन है। इस परम साधनाके बारह भेद स्वीकार किये गये हैं। वे इस प्रकार हैं : सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, चरित्रभक्ति, योग-भक्ति, आचार्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति, तीर्थंकरभक्ति, शान्तिभक्ति, समाधिभक्ति, निर्वाणभक्ति, नन्दीश्वर-भक्ति और चैत्यभक्ति। तीर्थंकर और समाधिभक्तिका पाठन एक-दो अवसरों पर ही होता है। अतः उनका अन्य भक्तियोंमें अन्तर्भाव मान लिया गया है। इस भाँति दश भक्तियोंकी ही मान्यता है।[2]

विभिन्न भक्तियोंके विविध साधन हैं जिनसे भक्तके हृदयमें भक्तिदीपक प्रज्वलित होता है और क्षण-प्रतिक्षण इस पुनीत आलोकमें उसका कर्मजनित तम विलीन हो जाता है। वे साधन व्यक्तिकी विवेक-पूर्ण अभिव्यक्तियाँ भी हैं।

भागवतमें भक्ति—भागवतमें भक्तिके साध्य और साधन—दोनों ही पक्षोंका विवेचन हुआ है। साधना रूपा भक्तिको नवधा भक्ति, वैधी भक्ति अथवा मर्यादा भक्ति कहते हैं और साध्यरूपा भक्तिको प्रेमाभक्ति तथा रागानुगा अथवा रासात्मिका भक्तिके नामसे अभिहित किया जाता है। साधना रूपा भक्तिके पाँच अंग माने गये हैं : उपासक, उपास्य, पूजाद्रव्य, पूजाविधि और मन्त्र-जप। श्री भागवतमें भक्तिके कई प्रकारसे भेद गिनाये हैं। तृतीय स्कन्धमें भक्तिके चार प्रकार माने हैं : सात्त्विकी, राजसी, तामसी तथा निर्गुण। फिर सप्तम स्कन्धमें नौ भेद बतलाये हैं : श्रवण, कीर्तन, विष्णुस्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दना, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन।[3]

---

१. २. डा० प्रेमसागर जैन : जैनभक्तिकाव्यकी पृष्ठभूमि, पृष्ठ ८–१० और ६४

३. श्रीमद्भागवत सप्तम स्कन्ध, ५।२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन भेदोंके तीन भाग किये जा सकते हैं। श्रवण, कीर्तन और स्मरण, श्रद्धा और विश्वासकी वृत्तिके सहायक हैं। पदसेवा, अर्चन और वन्दन वैधी भक्तिके विशेष अंग हैं तथा दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन रागात्मिका भक्तिसे सम्बन्ध रखते हैं। श्रीमद्भागवतमें इन तीनों ही अंगोंका बड़े विस्तारसे विवेचन हुआ है : आगे चलकर दास्य, सख्य और आत्म-निवेदनको ही गोस्वामीजीने भक्ति रसका उत्पादक माना है। इनमें भी आत्म-निवेदनका विशेष महत्व है क्योंकि आत्म-निवेदनमें साधन और साध्य एक हो जाते हैं।[१]

जैन गीतकाव्योंमें भक्तिके साधन—व्यापक रूपसे विचार किया जाय, तो भक्तिके ये सभी साधन जैन गीतकाव्यमें पाये जाते हैं। इस काव्यके उन्नायकोंमें कविवर द्यानतराय, बुधजन, भानुमल, दौलतराम, वीरचन्द, भूधरदास, आनन्दघन, भागचन्द्र और भैया बनारसीदास आदि कवि प्रसिद्ध हैं। इन्हीं ने भक्तिके उपरोक्त साधनोंको अपने गीतोंके माध्यमसे अभिव्यक्त किया है तथा हम यहाँ विभिन्न साधनोंके द्योतक कुछ गीत दे रहे हैं।

१. द्यानतरायका कीर्त्तन

प्रभु मैं किहि विधि थुति करौं तेरी।
गणधर कहत पार नहिं पावै, कहा बुद्धि है मेरी॥
शक्र जनम भरि सहस जीभ धरि, तुम जस होत न पूरा।
एक जीभ कैसे गुण गावै, उलू कहै किमि सूरा॥
चमर छत्र सिंहासन वरनौ, ये गुण तुमते न्यारे।
तुम गुण कहन वचन बल नाहीं, नैन गिने किमि तारे॥

२. द्यानतरायका स्मरण अथवा ध्यान

तुम शिवसुखमय प्रगट करत प्रभु चिंतन तेरो।
मैं भगवान समान भाव यों वरतै। मेरो॥
यदपि झूठ है तदपि तृप्ति निश्चल उपजावै।
तुव प्रसाद सकलंक जीव वांछित फल पावै॥

३. दौलतरामका दर्शन महात्म्य

निरख सुख पायो, जिन मुखचन्द
मोह महातम नाश भयो है उर अम्बुज प्रफुलायो।
ताप नस्यो, तब बढयो उदधि आनन्द॥ निरख०॥
चकवी कुमति विछुरि अतिविलखे आतम सुधा सुवायो।
शिथिल भये सब, विधि गणफन्द॥ निरख०॥
विकट भवोदधि को तट निकट्यो, अघ तक मूल नसायो।
दोल लह्यो, अब सुपद स्वच्छन्द॥ निरख०॥

४. बुधजनका पद वन्दन

तुम चरनन की शरन, आय सुख पायो।
अबलो चिर भववन में डोल्यों, जन्म जन्म दुख पायो॥ तुम०॥
ऐसो सुख सुरपति कै नाहीं, सौ मुख जात न गायौ।
अब सब सम्पति मो उर आई आज परम पद लायो॥ तुम०॥

१. डा० हरवंशलाल शर्मा, सूर और उनका साहित्य, पृ० २२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन वच तन ते दृढ़ करि राखो, कवहुं न ज्या विसरायो।
वारम्वार वीनवै बुधजन, कीजे मनको भावौ ।। तुम० ।।

५. भानुमलका अर्चन (पूजन)

द्रव्य आठों जु लोना है अर्घ कर में नवीना है।
पूजते पाप छीना है, भानुमल जोर कीना है ।।
दीप अढ़ाई सरस राजै, क्षेत्र दश ता विषे छाजै।
सात शत बीस जिन राजे, पूजनां पाप सब भाजै ।।

भानुमल, दैनिक पूजा-पाठ गुटका पृ० २२

अर्चनाका एक अन्य गीत भी देखिये :

नाथ तोरी पूजा को फल पायो, मेरे यो निश्चय अब आयो
मेंढक कमल पांखुरी, मुख में वीर जिनेश्वर धायो।
श्रेणिक गज के पगतल मूवो, तुरत स्वर्गपद पायो ।। नाथ० ।।
मैना सुन्दरी शुभमन सेती, सिद्धचक्र गुण गायो।
अपने पति को कोढ़ गमायो, गंधोदक फल पाये ।। नाथ० ।।
अष्टापद में भरत नरेश्वर, आदिनाथ मन लायो।
अष्टद्रव्य से पूजा प्रभुजी, अवधिज्ञान दरसायो ।। नाथ० ।।
अञ्जनसे सब पापी तारे, मेरो मन हुलसायो।
महिमा मोटी नाथ तुमारी, मुक्ति पुरी सुख पायो ।। नाथ० ।।
थकीथकी हारे सुर नरपति, आगम सीख जितायो।
देवेंद्रकीर्ति गुरु ज्ञान मनोहर, पूजा ज्ञान बतायो ।।
नाथ, तोरी पूजाको फल पायो,
मेरे यो निश्चय अब आयो।

दैनिक पूजा-पाठ गुटका, पृ० ८४

६. द्यानतराय का दास्य भाव

तुम प्रभु, कहियत दीन दयाल,
अपन जाय मुकुति में बैठे, हम जु रुलत जग जाल।
तुम प्रभु, कहियत दीन दयाल।
तुमरो नाम जपै हम नीके, मन बच तीनौं काल।
तुम तो हमको कछू देत नहि, हमरो कौन हवाल ।।
भले बुरे हम दास तिहारे, जानत हो हम चाल।
और कछू नहि हम चाहत हैं, राग दोषको टाल ।।
तुम, प्रभु कहयित दीन दयाल।
हम सौं चूक परी सो बकसो, तुम तो कृपा विसाल।
द्यानत एक बार प्रभु जगतैं, हमको लेहु निकाल।
तुम प्रभु कहियत दीन दयाल ।।

द्यानतराय, अध्यात्मपदावली, पृ० २६६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. दौलतरामका शरणागत भाव

जाऊँ कहाँ तज शरन तिहारे ।
चूक अनादितनी या हमरी, माफ करो करुणा गुन धारे ।
डूबत हों भवसागरमें अब, तुम विन को महुं वार निकारे ।
तुम सम देव अवर नहिं कोई, तातें हम यह हाथ पसारे ।
मोंसम अधम अनेक उधारे, वरनत हैं श्रुत शास्त्र अपारे ।
दौलत को भव पार करो, अब आया है शरनागत प्यारे ।

८. दौलतरामका आराध्यके स्वरूपका ध्यान

नेमि प्रभूकी श्याम बरन छवि, नैनन छाय रही । टेक ।
मणिमय तीन पीठ पर अम्बुज ता पर अधर हठी ।। नेमि० ।।
मार-मार तप धार जार विधि, केवल ऋद्धि लही ।
चार तीस अतिशय दुति मण्डित, नव दुग दोष नहीं ।। नेमि० ।।
जाहि सुरासुर नमत सतत मस्तक मैं परस मही ।
सुर गुरु उर अम्बुज प्रफुलावन, अद्भुत भान सही ।। नेमि० ।।
धर अनुराग विलोकत जाको, दुरित नसै सबही ।
दौलत महिमा अतुल जासकी, का पै जात कही ।
नेमि प्रभू की श्याम बरन छवि, नैनन छाय रही ।।

भक्ति और सत्संगति

सत्संगति भक्तिके लिये अधिक प्रेरक मानी गई है । इसीलिये सन्तोंने इसकी अधिक महिमा गाई है । कविवर वीरचन्दका निम्न पद इस विषयमें उल्लेख्य है :

करो रे मन, सज्जन जनकी संग । टेक ।
नीचकी संगति नीच कहावे, धेनु न होत कुरंग ।
हंसन देख्यो बगुला कहता, भेरुण्ड न होत भुरंग ।। १ ।।
चन्दन को कोई नीम न कहवत, सागर होत न गंग ।
अमृतको नहि विष उच्चारत, खरको कहे न तुरंग ।। २ ।।
कोयलको कोई काग न कहवत, महिषी न होत मतंग ।
नहीं सितारको कहत सारंगी, नहीं मृदंगको चंग ।। ३ ।।
दिन को रैन नहीं कोई कहवत, रवि को कहे न पतंग ।
वीरचन्द नहिं श्वेत दूध को, कहे न कारो रंग ।। ४ ।।

भजन संग्रह, पृ० ११६

कवि भूधरदासने भी भगवान्से प्रार्थना करते हुए सहधर्मी जनकी सङ्गतिके लिए अभिलाषा प्रकट की है :

"आगम अभ्यास होहु सेवा सर्वज्ञ तेरी, सङ्गति समीप मिलो साधरमी जनकी ।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि आनन्दघनके अनुसार साधु सङ्गतिके बिना परममहारस धामका पाना सम्भव नहीं है :

साधु संगति बिन कैसे पैये, परम महारस धाम री ।
कोटि उपाय करे जो बौरो, अनुभव कथा विसराम री ।।
सीतल सफल सन्त सुर पादप, सेवे सदा सुछांइ री ।
वंछित फले, टले अनवंछित, भव सन्ताप बुजाइ री ।।
चतुर विरंचि विरंजन चाहे, चरण कमल मकरंद री ।
को हरि भरम बिहार दिखावे, शुद्ध, निरंजन चांद री ।।
देव असुर इन्द्र पद चाहूं न, राज न काज समाज री ।
सङ्गति साधु निरन्तर पावूं, आनन्दघन महाराजजी ।।

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र सं० आनन्दघन, पृ० ६१

गोस्वामी तुलसीदासने भी साधु सङ्गतिको आनन्द और मङ्गलका मूल बताते हुए तुलसी दोहावलीमें इसे कोटि अपराध विनाशक कहा है :

एक घड़ी, आधी घड़ी, आधी में पुन आध । तुलसी सङ्गति साधु की, हरे कोटि अपराध ।।

स्तुति और स्तोत्र : सामान्यतया ये पर्यायवाची कहे जाते हैं । इन दोनोंका भी भक्तिमें महत्त्वपूर्ण स्थान है । आराधक अपने आराध्यकी स्तुति करके उनके गुणोंकी प्रशंसा करता है तथा अपने पापोंको अस्तित्वहीन बनाता है । जैन कवियोंने विविध रूपोंमें अपने उपास्यकी वन्दना की है । इस सम्बन्धमें कविवर भूधरदासकी सिद्ध स्तुति एवं जिन-वाणी स्तवन विशेष लोकप्रिय हैं :

सिद्ध स्तुति

ध्यान हुतासन में अरि ईंधन, झोंक दियो रिपुलोक निवारी ।
शोक हर्यो भविलोकन को, वर केवल ज्ञान मयूर अधारी ।।
लोक अलोक विलोक भये, शुभ जन्म जरामृत पंक परवारी ।
सिद्धन थोक बसे शिवलोक, तिन्हे पग धोक त्रिकाल हमारी ।।

× × ×

तीरथ नाथ प्रनाम करैं, तिनके गुन वर्नन में बुधि हारी ।
मोम गयी गल सूस मंझार रही तहं व्योम तदाकृत धारी ।।
लोक गहीर नदीपति नीर, भये तिरतीर तहां अविकारी ।
सिद्धन थोक बसे शिवलोक, तिन्हे पग धोक त्रिकाल हमारी ।।

जैनशतक, पृ० ११

जिनवाणी स्तुति

वीर हिमाचल तें निकसी, गुरु गौतम के मुख कुण्ड डरी है ।
मोह महाचल भेद चली, जग की जड़ता-तप दूर करी है ।।
ज्ञान पयोनिधि मांहि रली, बहुभंग तरंगनि सों उछरी है ।
ता शुचि शारद गंगनदी, प्रति में अंजली निज शीश धरी है ।
या जगमन्दिरमें अनिवार अज्ञान अन्धेर छयो अतिभारी ।
श्रीजिनकी धुनि दीप शिखा सम, जो नहि होत प्रकाशन हारी ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो कहँ भांति पदारथ पांति कहां लहते रहते अविचारी।
या विधि संत कहँ धनि हैं धनि हैं जिन बैन बड़े उपकारी ।।

जैन शतक्, पृ० १३

पूजा और भक्ति

पूजा भक्तिका एक प्रमुख साधन है। भगवान्‌की पूजा करके सामान्य मानव भी असामान्य बन जाता है। भाव दृष्टिसे पूजा एवं स्तोत्र—दोनों समान हैं। इनमें केवल शैलीगत भेद ही है। किन्तु कुछ लोग परिणामकी दृष्टिसे भी दोनोंमें महदन्तर स्वीकार करते हैं। वे **पूजाकोटिसमं स्तोत्रं** मानते हैं। यहाँ कहने वालेका पूजासे तात्पर्य केवल द्रव्य पूजासे है क्योंकि भावमें तो स्तोत्र भी शामिल है। पूजकका ध्यान पूजन की बाह्य सामग्री, स्वच्छता आदि पर ही रहता है जबकि स्तुति करने वाले भक्तका ध्यान एकमात्र स्तुत्य व्यक्तिके विशिष्ट गुणों पर टिकता है। वह एकाग्रचित्त होकर अपने स्तुत्यके एक-एक गुणको मनोहर शब्दोंके द्वारा व्यक्त करनेमें निमग्न रहता है।[1] पूजा एक ऐसा व्यापक शब्द है कि इसमें स्तुति, स्तोत्र, भजन आदि सब समाविष्ट होता है। पूजाके सम्पादनमें ध्यान, जप, तपादि किसी न किसी रूपमें आ ही जाते हैं। पूजाकी जयमालामें आराध्यकी पूर्ण प्रशस्ति रहती है। एवं पूजा करने वालेकी विशुद्ध कामना भी इसमें व्यक्त हो जाती है। पूजाके दोनों ही रूप—द्रव्य और भाव पूजा आत्म-विशुद्धिके लिये परम आवश्यक हैं। इन दोनों पूजाओंमें इतना ही अन्तर है कि द्रव्यपूजामें द्रव्योंके द्वारा भगवान्‌के बिम्ब अथवा किसी अन्य चिन्हकी पूजा होती है तथा भाव पूजामें जिनेन्द्र देवको मानसके अन्तस्यलमें स्थापित किया जाता है। आचार्य वसुनन्दिने पूजाके छः भेद स्वीकार किये हैं: नाम, स्थापना, द्रव्य क्षेत्र, काल और भाव।[2]

यहाँ पूजा शब्दके सम्बन्धमें डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्याने अपनी पुस्तक **भारतमें आर्य और अनार्य** में लिखा है कि होम और पूजा—इन दोनोंकी जड़ अलग-अलग है पर आर्य भाषी तथा द्राविड़ भाषी मित्र आर्यानार्य हिन्दूने इन्हें विरासत या पितृपितामहागत रिक्थके रूपमें प्राप्त किया है। पूजामें फूलका उवयोग हुआ करता है। बगैर फूलसे पूजा नहीं हो सकती। फूलके विकल्पमें ही जलादिका व्यवहार होता है। पूजा शब्द वस्तुतः आर्य भाषाका शब्द नहीं है। मार्क कालिन्सके मतके अनुसार इस शब्दका मौलिक अर्थ फूलोंसे कोई धर्मकार्य करना है। इस शब्दका उद्गम द्रविड़ भाषामें हैं। पूजाके अतिरिक्त भजन, आरती, पाठ, विनती, सामायिक पाठ, स्तुतियाँ आदि भी भक्तिके विविध आयाम हैं जिनको अपनाना भक्तके लिये आवश्यक है।

भक्तिकी उपलब्धियाँ

पूर्वमें संकेत किया जा चुका है कि भक्तिकी उपलब्धियाँ अनेक हैं, जो सेवकके मानसको समुज्ज्वल करती हैं तथा उसे स्व-पर-भेदके हेतु कई रूपोंमें प्रबुद्ध करती हैं। संसारसे विमुख होकर वह साधक विषय वासनाको भुजङ्ग मानने लगता है, स्वयं जागरूक बनकर सांसारिक वैभवको त्याज्य मानता है एवं धर्म साधनामें लीन होकर अपने आपको सन्मार्गका पथिक बनाता है। इन उपलब्धियोंमें आत्मप्रबोधन, जगनिस्सारता, पश्चात्तापकी अभिव्यक्ति, आत्मविश्वासकी जागृति तथा ब्रह्मैक्य प्रमुख हैं। जैन गीतकारोंने इन उपलब्धियोंको भी गीतबद्ध किया है। इनके कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं।

---

१. प्रेमसागर जैन, जैन भक्तिकाव्यकी पृष्ठभूमि; (२) पं० हीरालाल जैन, पूजा, स्तोत्र, जप, ध्यान और लय, अनेकांत, वर्ष १४, किरण ७, पृ० १९४

२. प्रेमसागर जैन, जैनभक्तिकाव्यकी पृष्ठभूमि, पृ० २५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२) भूधरका आत्मप्रबोधन गीत

भगवन्त भजन क्यों भूला रे?
यह संसार रैन का सुपना, तन-धन वारि-बबूला रे।
भगवन्त भजन क्यों भूला रे?

इस जीवनका कौन भरोसा, पावक में तृण पूला रे।
काल कुदार लिये सिर ठाँड़ा, क्या समझै मन फूला रे।
भगवन्त भजन क्यों भूला रे?

स्वारथ साधै पाँच पाँव तू, परमारथकौ लूला रे।
कहु कैसे सुख पैहैं प्रानी, काम करै दुखभूला रे।
भगवन्त भजन क्यों भूला रे?

मोह पिशाच छल्यों मति मारै, निज कर कन्ध बसूला रे।
भज श्रीराजमतीवर भूधर, दो दुरमति सिर धूला रे।
भगवन्त भजन क्यों भूला रे?

भूधरदास, अध्यात्मपदावली, पृ० २४३

दौलतरामका जगनिस्सारता द्योतक गीत

छाँड़ि दे बुधि भोरी वृथा तन से रति जोरी ।। टेक ।।
यह पर है न रहै थिर पोषत, सकल कुमल की झोरी
या सों ममता करि अनादिसे, बन्धो करम की डोरी ।।
सहै दुख जलधि हिलोरी ।। छाँड़ि० ।।
ये जड़ हैं तू चेतन यों ही, अपनावत बरजोरी।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन निधि, ये हैं सम्पति तोरी ।।
सदा विलसो शिवगोरी ।। छाँड़ि ।।
सुखिया भये सदीप जीव जिन, या सों ममता तोरी।
दौल सीख यह लीजै पीजै, ज्ञान पियूष बटोरी ।।
मिटे पर चाह कठोरी ।। छाँड़ि० ।।

(३) भागचन्द्र कविका पश्चात्तापकी अभिव्यक्ति परक पद

मो सम कौन कुटिल खल कामी। तुम सम कलिमल दलन न नामी।
हिंसक झूठ वाद मति विचरत, परधन हर परवनिता गामी।
लोभी चित नित चाहत धावत, दशदिश करत न खामी।
रागी देव बहुत हम जाँचे, राँचे नहि तुम साँचे स्वामी।
बाँचे श्रुत कामादिक पोषक, सेये कुगुरुसहित धन धामी।
भाग उदय से मैं प्रभु पाये, वीतराग तुम अन्तरयामी।
तुम धुनि सुनि परजय में परगुण जाने निज गुण चित विसरामी।
तुमने पशु-पक्षी सब तारे, तारे अंजन चोर सुनामी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भागचन्द करुणाकर सुख कर, हरना यह भव सन्तति लामी।
मो सम कौन कुटिल खल कामी, तुम सम कलिमल दलन न नामी ॥

(४) भूधरदासका मायाके प्रति विद्रोह परक पद

सुन ठगनी माया, तैं सब जग ठग खाया।
टुक विश्वास किया जिन तेरा, सो मूरख पछिताया ॥ सुन० ॥
आया तनक दिखाय बीज ज्यों, मूढ़मती ललचाया।
करि मद अन्ध धर्म हरि लीनौ, अन्त नरक पहुँचाया ॥ सुन० ॥
केते कन्थ किये तै कुलटा, तो भी मन न अघाया।
किसही सौ नहिं प्रीति निबाही, वह तजि और लुभाया ॥ सुन० ॥
भूधर ठगन फिरै यह सबकौं, भौदुं करि जग पाया।
जो इस ठगनी को ठग बैठै, मैं तिसकों सिर नाया ॥ सुन० ॥

इसी प्रकार आनन्दघन एक गीतमें पूजासे आत्मविश्वासकी जागृति करते हैं और दौलतराम एक प्रार्थनागीतमें अपने अवगुणोंके लिये क्षमायाचना करते हैं। इस प्रकरणमें आनन्दघनका निम्न सर्व धर्म समाक्षरी गीत उल्लेखनीय है :

आनन्दघनका ब्रह्मैकता सूचक पद

राम कहो रहमान कहो, कोउ, कान कहो महादेव री
पारसनाथ कहो कोउ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेव री।
भाजन भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूप री।
तैसे खण्ड कल्पनारोपित, आप अखण्ड स्वरूप री।
निज पद रमे राम सो कहिये, रहिम करे रहमान री।
कर ते करम कान सो कहिये महादेव निर्वाण री।
परसे रूप पारस को कहिये ब्रह्म चिन्हें सो, ब्रह्म री।
इह विध साधो आप आनन्दघन चेतनमय निःकर्म री।

आनन्दघन, जैन कवि, पृ० ६०—६७

भक्ति और भावना

यह हमें स्मरण रखना चाहिये कि भक्ति क्षेत्रमें जाति-वर्ग आदिके कल्पित भेदभाव नगण्य हैं। साधु सन्तोंकी भाँति जैन कवियोंने भी इस सम्बन्धमें जाति मान्यता आदिके विरोधको तीव्र स्वरोंमें व्यापक बनाया है। इस जाति-वर्णादिकी निस्सारताको घोषित करने में जैन कवियोंने ऐसी कथाओंकी चर्चा की है जो जैनाम्नायमें पूर्णरूपेण स्वीकृत हो चुकी हैं। आचार्य रविषेण पद्मचरितमें कहते हैं :

न जातिर्गर्हिता काचित्, गुणाः कल्याणकारणम्।
व्रतस्थमपि चाण्डालं, तं देवाः ब्राह्मणं विदुः ॥

तात्पर्य यह हैं कि जैनधर्ममें धर्म रूपसे प्रतिपादित चरित्र धर्म है वर्णाश्रम नहीं हैं किन्तु मोक्षकी इच्छासे आर्य या म्लेक्ष जो भी इसे स्वीकार करते हैं, वे सभी इसके अधिकारी होते हैं। यह हमारी ही कोई कल्पना नहीं है क्योंकि जैनधर्म तो इसे स्वीकार करता ही है, मनुस्मृति भी इस तथ्यको स्वीकार करती है :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा सत्यमस्तेयशौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ।।

याज्ञवल्क्य स्मृतिमें यह सामान्य धर्म नौ भेदोंमें विभक्त किया गया है। इसमें पाँच पूर्वोक्त धर्मोंके अतिरिक्त दान, दम, दया और शान्ति भी समाहित किये गये हैं :

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
दानं दमो दया क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम् ।। ५–१२३ ।।

इस श्लोकमें आये हुये **सर्वेषां** पदकी व्याख्या करते हुए वहाँ टीकामें कहा है कि ये अहिंसा आदि नौ धर्म ब्राह्मणसे लेकर चण्डाल तक सब पुरुषोंके साधन हैं।[1]

जैनधर्म किसी जाति विशेषका धर्म नहीं है। उसका पालन प्रत्येक मानव कर सकता है। **श्रावक-धर्म दोहा**के कर्ताने श्रावक-धर्मका उपसंहार करते हुए इस सत्यको बड़े ही मार्मिक शब्दोंमें व्यक्त किया है :

एहु धम्मु जो आयरइ बभणु सुद्दु वि कोइ ।
सो सावउ किं सावयहं अण्णु कि सिरि मणि होइ ।। ७६ ।।

धर्मके माहात्म्यकी चर्चा स्वामी समन्तभद्रने भी रत्नकरण्डश्रावकाचारमें की है। उन्होंने बताया है कि धर्मके माहात्म्यसे कुत्ता भी मरकर देव हो जाता है और पापके कारण देव भी मरकर कुत्ता हो जाता है। धर्मके माहात्म्यसे जीवधारियोंको कोई ऐसी अनिर्वचनीय सम्पत्ति प्राप्त होती है जिसकी कल्पना करना शक्तिके बाहर है उनके अनुसार जो मनुष्य सम्यग्दर्शनसे सम्पन्न हैं, वह चाण्डालके शरीरसे उत्पन्न होकर भी देव अर्थात् ब्राह्मण या उत्कृष्ट है, ऐसा जिनदेव कहते हैं। उनकी दशा उस अंगारेके समान हैं जो भस्म से आच्छादित होकर भी भीतरी तेजसे प्रकाशमान है। हिन्दीके भक्ति कालके सर्वोच्च महाकवि गोस्वामी तुलसीदासने भी भक्ति विवेचनमें नीच-ऊँच जातिकी सर्वथा उपेक्षा की है। उनकी दृष्टिमें तो मानसकी पावनता तथा रामके प्रति अगाध श्रद्धा ही सब कुछ है।

जैन कवि आनन्दघनने भी आत्मनिरूपणके अन्तर्गत जाति-पांतिकी पूर्ण अवहेलना की है। उनका निम्न गीत देखिये :

अवधू नाम हमारा राखे, सोई परम महारस चाखै ।
ना हम पुरुष नहीं हम नारी, वरन न भांति हमारी ।।
जाति न पांति न साधन साधक, ना हम लघु नहिं भारी ।
ना हम ताते ना हम सीरे, ना हम दीर्घ न छोटा ।।
ना हम भाई ना हम भगिनी, ना हम बाप न धोटा ।
ना हम मनसा न हम सबदा, ना हम तन की धरणी ।।
ना हम भेख भेखधर नाहीं, ना हम करता करणी ।।
ना हम दसरन ना हम परसन, रस न गंध कछु नाहीं ।
आनन्दघन चेतनमय मूरति, सेवनक जन बलि जाहीं ।

आनन्दघन, (सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र), पृ० ४१

---

१. फूलचन्द सिद्धान्तशास्त्री, वर्ण, जाति और धर्म, पृ० ४९ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस पदमें चित्रित आत्मानुभूति जिनभक्तिकी चरम उपलब्धि है जिसे पाकर सच्चा भक्त अपने आपको गौरवान्वित मानता है। शनैः-शनैः इस भक्ति समन्वित आराधककी अनुभूतियां विषयोंसे विरक्त होती हुई आत्मचिन्तनमें लीन हो जाती हैं और वह दौलतरामकी तरह गुनगुनाते लगता है :

हम तो कबहुं न निज घर आये।
पर घर फिरत बहुत दिन बीते, नाम अनेक धराये।
हम तो कबहुँ न निज घर आये।
पर पद निज पद मानि मगन ह्वै, पर परनति लपटाये।
शुद्ध बुद्ध सुखकन्द मनोहर, चेतन भाव न भाये।
हम तो कबहुँ न निज घर आये।
नर, पशु, देव, नरक निज जान्यो, परजय बुद्धि लहाये।
अमल, अखण्ड, अतुल, अविनाशी, आतम गुन नहिं गाये।
हम तो कबहुं न निज घर आये।
यह बहु भूल गई हमरी फिर, कहा काज पछताये।
दोल तजो अजहूँ विषयन को, सतगुरु वचन सुहाये।
हम तो कबहुँ न निज घर आये।

इस प्रकार दिन बीतते जाते हैं और आराध्यके प्रति बढ़ती हुई भक्ति भावना नित नये उन्मेषोंसे परिपुष्ट होती है। अपने कर्तव्योंको निभाता हुआ साधक उस क्षणकी स्मृति करने लगता है जब वह परम तपस्वीके रूपमें दिगम्बर बनकर आत्म सन्तुष्टिसे विभोर हो उठेगा।

इस प्रकार प्रत्येक जीवके जीवनको सफल बनाने वाली भगवान्की यह भक्ति पूर्ण आनन्ददायिनी है एवं समस्त सुख प्रदात्री है। मानवको चाहिये कि वह यथासमय सजग होकर अपना आत्मकल्याण करे तथा पर्याप्त ज्ञान अर्जित करे। कविवर भूधरदासका यह कवित्त इस सम्बन्धमें कितना प्रेरणादायक है।

जौलों देह तेरी काहू रोग सों न घेरी,
जौलों जरा नहिं घेरी जासों पराधीन परिहै।
जौलों जमनामा वेरी देय न दमामा,
जौलों माने कान रामा बुद्रि जाइ न बिगरिहै।
तौलों मित्र मेरे, निज कारज सवांर ले रे,
पौरुष थकेंगे फेर, पीछे कहा करिहै।
अहो आग लागे जब झोपरी जरन लागी,
कुआँके खुदाये तब कौन काज सरिहै।

इस प्रकार निराकुलता जन्य अमर शान्तिकी प्राप्तिके लिये भगवान्की भक्ति ही उत्कृष्ट साधन है। जैन गीत साहित्यमें उसके विविध रूपोंके उपरोक्त विवरणसे भक्तिके सार्वजनिक एवं काव्यमय रूपकी पर्याप्त आकर्षक झाँकी प्राप्त होती है। ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org